चण्डी (दुर्गा सप्तशति) काव्यशास्त्रीय समीक्षा

श्रीप्रकाश सिंह
विभागाध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
सूरज सिंह मेमोरियल कॉलेज
रांची विश्वविद्यालय,
रांची

सारांश

अमेरिकन लेखक डब्लू0 जे0 लॉग ने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास को प्रारम्भ करते हुए लिखा है – ''एक बार एक प्रौढ़ व्यक्ति एक बच्चे के साथ समुद्र के किनारे घूम रहा था, बच्चे ने बालू पर पड़े एक छोटे से शंख को देखा जब शंख को उसने अपने कान के पास लगाया, तो उसके कानों से समुद्र की गर्जना के साथ अनेक प्रकार के स्वर सुनाई देने लगे, बच्चे ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए, प्रौढ़ व्यक्ति को बताया कि इस छोटे से शंख में आश्चर्यजनक स्वर, सुनाई पड़ रहे हैं। प्रौढ़ व्यक्ति ने भी शंख लिया और कान से लगाया तो उसे भी उसी प्रकार के स्वर सुनाई दे रहे थे जिस प्रकार बच्चे को अनुभूत हो रहे थे।

मुख्य शब्द : दुर्गा सप्तशति, काव्यशास्त्रीय समीक्षा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व, सामाजिक प्रतिभूतियाँ।

परिचय

जे0 लॉग ने इस उदाहरण के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया है कि–साहित्य का काव्य के माध्यम से मानव जीवन के अतीत तथा वर्त्तमान की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पतिभूतियाँ मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत होती हैं।

हमारे आज के इस विषय से संस्कृत के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वर सुनने को मिलेंगे।

''चण्डी'' या दुर्गासप्तशति का काव्यशास्त्रीय समीक्षा के पूर्व, इससे उद्भूत होने वाले समाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व के बीज जो इसके कथानक की आत्मा है–उसका रहस्योद्घाटन करना चाहता हूँ।

दुर्गा सप्तशती, मार्कण्डेय पुराण के 81 से 93 अध्याय का संकलन है। इसमे 13 अध्याय है जिसका तीन चरित्रों में विभक्त माना जाता है इन तीनों की अधिष्ठात्री देवी सत्, रज एवं तम की प्रतिमूर्त्ति महाकाली महालक्ष्मी एवं महा सरस्वती हैं।

प्रथम चरित्र मे प्रथम अध्याय जिसकी अधिष्ठी देवी महाकाली है, इसे 'मधु कैट वध' या ''राग द्वेष बध'' के रूप में जाना जा सकता है।

इसका कथानक है – अर्णवाकार यह जगत जलमग्न हो रहा था और जगत के पालन कर्त्ता विष्णु शेष की शय्या पर शयन कर रहे थ। उनके कान के मैल से 'मधु–कैटभ' दो राक्षस उत्पन्न हुऐ। वे विष्णु के नाभि कमल में स्थित ब्रह्मा को मारने के लिए उपत हुए ने विष्णु को योग निद्रा में वेसुध सोते हुए देख कर जगन्माता का आवाह्न किया माता ने विष्णु को जगाया, विष्णु ने जागने पर सहस्त्रों वर्ष युद्ध कर उन प्रवल दैत्यो का वध किया।

परन्तु सामान्य जन अर्णव को प्रलय काल या अगम–अगाध जलराशि मात्र समझता है, उसे उस सनातन सत्य, अद्वय तत्त्व का, जिसके असीम कलेवर पर यह विपुल विश्व चित्रित हुआ है, कोई आभास नहीं होता। उसी प्रकार व्यापक होने से जीव ही यहाँ ''विष्णु'' शब्द से कथित हुआ है। प्रलय काल में भी शेष रह जाने वाले जीव को शुभाशुभ कर्मो को ही ''शेष'' कहा गया है। अतः शेष पर विष्णु के शयन करने का अर्थ है–कर्मो के फल भोग में फंस कर वेसुध हो जाना, असावधान हो जाना इस प्रकार जगत के व्यापार से हीन हा अवस्थित रहने का नाम है – 'विष्णु की निद्रा'। व्यापक चैतन्ययाकाश ही ''विष्णु कर्ण'' है चैतन्य का त्रिगुणात्मक अविद्या रूप आवरण ही 'विष्णु कर्ण का मल' है। इस मल से उद्भूत होने वाला अहं बोध–'मधु' है और बहुभवन की इच्छा 'कैटभ' है। इसे 'रोग–द्वेष' या 'मधु कटभ' नाम से समझा जा सकता है। ये राग–द्वेष, सन्मार्गोन्मुख मन अर्थात् 'ब्रह्मा' को असन्मार्गो की ओर आकृष्ट करते हैं। उस समय मन (ब्रह्मा) यदि जगन्माता महामाया की शरण में जाता है तो वे कृपाकर फल–भोग में फँसे मानव को सचेत कर देती है, फिर सचेत मानव अभ्यास और वराग्य रूप बाहुओं से ''राग–द्वेष'' के साथ युद्ध करता है और अन्त में उन्हे पराजित कर मन का ''साधन मार्ग'' प्रशस्त कर देता है।

एतदर्थ प्रथम चरित्र का कथन है कि जो व्यक्ति भगवती की अराधना करता है एवं कतव्य के अभिमान तथा सुकृत–दुष्कृत कर्मफल को त्यागकर अपने विहित कर्म में प्रवृत्त रहता है उसका जीवन शान्तिपुर्वक निर्विघ्न रूप से व्यतीत होता है–यही ''ब्राह्मी स्थिति'' है।

मध्यम चरित्र

इसे 'महिषासुर वध' के नाम से जाना जाता है। इस चरित्र की अधिष्ठात्री 'महालक्ष्मी' है। इस चरित्र का कथानक है–प्राणी का अस्तित्व देह तक सीमित है। देह के जन्म के साध उसका जन्म और देह की मृत्यु के साथ उसकी मृत्यु होती है। विषय सुख ही परम सुख है और प्रभुत्व का अधिकाधिक विस्तार ही उस सुख का उपाय है। किसी भी प्रकार उसका सम्पादन ही परम पुरुषार्थ है। इस प्रकार के विचार ही ''असुर'' हैं, और इन विचारों की पष्टि एवं बल–बृद्धि जिससे हो वही इनका अधिपति ''महिषासुर'' है। और वह तामस 'अहं' भाव है। यह अहं भाव उक्त विचार रूप अपने असुर सैनिकों द्वारा सद् विचार रूप सुरों को पराजित कर उसके स्वामी विवके रूप ''इन्द्र'' को पद्च्यूत कर सत्व–रूप ''स्वर्ग'' पर अपना अधिकार स्थापित करता है।

महिषासुर का अन्त करने के लिए देवी को अवतिर्ण होना पड़ता है। पद्च्यूत इन्द्र और पराजित देव उस असुर का कुछ नही बिगाड़ सकते। स्वयं भगवती को भी इसे पछाड़ने के लिए महान समराम्भ करना पड़ता है।

एतदर्थ–अहंकार–'महिष' ने, विवेक 'इन्द्र', धैर्य–सूर्य, साम्य–चन्द्रमा, न्याय–यम, दान–वरूण को हराकर स्वयं विवेक अर्थात् इन्द्र वन गया और सत्व रूप स्वर्ग से निष्कासित कर दिया।

भगवति के सभरारम्भ में उनके साथ समस्त देवों के तेज और अस्त्र–शस्त्र के अतिरिक्त वाहन सिंह अर्थात् धर्म। .... सिंह समग्र धर्ममीश्वरम्।।'' (दुर्गा सप्तशति, वैकृति रहस्मयम्) सम्मिलित होकर चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, वाष्कल, विडालस्य ताम्र, अन्धक, अतिलोभ, उग्रस्य, उग्रवीर, महाहनु विडालस्य, महासुर, उर्धर और दुर्मुख नामक चौदह असुर सेनानी का वध किया अर्थात् अहंकार–महिष के प्रमुख चौदह सहायक सुख, दुख, द्वन्द, मान–अपमान आदि के मारे जाने पर अन्त में अहं अर्थात् महिष का वध भगवती ने किया। मध्यम चरित्र में मोह का कारण कर्मफलासक्त दिखाया गया है। उत्तम चरित्र में परानिष्ठा ज्ञान के बाधक आत्ममोहन अहंकारादि के निराकरण का वर्णन है।

शुम्भ अर्थात् अहंकार

निशुम्भ – ममाकार (ममत्वाभिमन) इसे शुम्भ का अनुज कहा गया।

चण्ड और मुण्ड – काम और क्रोध
सुग्रीव – दम्भ
धूम्रलोचन – लोभ
रक्तबीज – विषयाभिलाष

इस चरित्र में रक्तबीज अर्थात् विषयाभिलाष का वध भगवती सर्वाधिक के लिए श्रमसाध्य था अतः काली अर्थात् विषय में अप्रियत्व, हीनत्व तथा असौन्दर्य की भावना का साथ लेना पड़ता है। तभी विलक्षण 'रक्तबीज' का वध सम्भव हो पाता है।

काव्यशास्त्रीय समीक्षा

श्रृंगार रस – सामान्यतः नायक–नायिका के प्रेम व्यापार की व्यंजना में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति मानी जाती है। दुर्गासप्तशती में आद्योपान्त देवी में पूज्य भाव रख कर सारे वर्णन किये गये हैं। तथापि काव्याचार्यों ने नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन के अन्तर्गत तीन विशिष्ट तत्त्वों का उल्लेख किया है। ये तत्व है–शोभ, कान्ति और दिप्ति।

नायिका का रूप और रूप जन्य प्रतिष्ठा – शोभा
नायिका के शरीर की विमल झलक – कान्ति
और उसके शरीर से आभाषित प्रकाश – दीप्ति कहलाते है।

द्वितीय अध्याय के ''ध्यान'' में वर्णित देवी की 'शोभा' अवलोकनीय है–

ऊ अक्षरस्त्रपरशुं गदेषु कुलिशं पद्यं धनुष कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टा सुराभाजनम्।
शुलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तै प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मी सरोजस्थिताम्।।
(2–1 पृ0–45)

इसी प्रकार तृतीय अध्याय के ध्यान में देवी के दिव्य शरीर की कान्ति उदयकाल के सहस्त्रों सूर्यो के समान बताई गई है।

उद्यद्भानुदानुसह कान्तिमरूणक्षौभां शिरोमालिकां

चतुर्थ अध्याय मे उनके श्री अंगों की आभा काले मेघ के समान श्याम बताई गई है, उनके मस्तक पर आबद्ध चन्द्रमा की रेखा शोभा पाती हैं तथा देवता एवं सिद्धि की कामना रखने वाले पुरुष सदैव उनकी सेवा में लगे रहते हैं –

ऊँ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभ्यदां मौलिबन्द्धेन्दुरेखां
शंक चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करेरूद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूपां त्रिभुवनभाखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गा जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः।

वीर रस

प्रथम अध्याय में जब ब्रह्मा के स्तुति करने पर भगवान विष्णु की योग–निद्रा रूप महामाया भगवान् विष्णु को मुक्त कर देती है तो उन्होंने मधु–कैटभ के साथ पाँच हजार वर्षों तक युद्ध किया। उस प्रसंग में – उत्तस्थौ जगन्नाधस्या मुक्तो जनार्दनः।

अपिच

समुत्थाय ततस्ताम्यां युयुधे भगवान हरिः।
पंचवर्षसहस्त्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।।

तृतीय अध्याय मे भी वीर रस के अनेकों उदाहरण है –

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्ताम्बिका द्रुतम्।
हुंकारभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम्।।

एवं

गर्ज गर्ज क्षणं मूठ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।

रौद्र रस

दुर्गा सप्तशती में यह रस प्रायः अधिकांशतः परिलक्षित होता है – यथा

क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः।।

आदि।

भयानक रस यथा

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्युष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषान्तो देवीमन्ये महासुराः।।

देवी ने क्रोध वश दैत्य सेना को तहस–नहस कर रही होती है तभी दैत्या के मस्तक कटने के बाद भी केवल धड़ रूप में ही दैत्य उठ–उठकर देवी से युद्ध हेतू तत्पर हो जाते हैं।

एवं, रक्तबीज वध हेतु ''काली'' अवतरित होती हैं, जो कि नरमुण्डों की माला तथा चीते के चर्म का वस्त्र धारण किए थी, उनके शरीर का मांस सूख गया था, उनकी जीभ लपलपा रही थी, जिस कारण से देवी अत्यन्त डरावनी प्रतीत हो रही थी। देवी का यह रूप देख दैत्यों में भया व्याप्त हो गया –

विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपचर्मपरीधाना शुष्कमांसति भैरवा।

विभत्स रस

पतितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
आगभ्य साभवत्तत्र यत्राभुत्स महारणः।।
शोणितोघा महानद्यः सधस्तत्र प्रसुस्त्रुवुः।
मध्ये चासुरसैनस्य वारणासुर वाजिनाम्।।

महिषासुर युद्ध के चरमोत्कर्ष पर देवी का वाहन सिंह भी क्रोधित होकर असुर सेना का संहार करने लगता है, उस समय धरती पर असुरों को रक्त की नदियाँ बहने लगती हैं। साथ ही हाथी, घोड़ों तथा असुरों के शवों से पृथ्वी व्याप्त हो जाती है।

सप्तम अध्याय में काली विकराली रूप धार कर दैत्यों को मार–मार कर उनका भक्षण करने लगीं –

सा वेगेनाभिपतिता धातयन्ती महासुरान।
सैन्ये तत्र सुरारीणाम्भक्षयत तद्बलम्।।

अद्भूत रस

सप्तशती के अनेकों श्लोक – ''अद्भुत रस'' से युक्त हैं। देवों की शक्तियाँ निकलकर एकत्रित होकर दिव्य प्रकाश पुंज का रूप लेती हैं। कुछ ही क्षणों में वह प्रकाश–पुंज एक अलौकिक नारी के रूप में परिणत हो गया। उस तेज की, उस अलौकिक रूप की कोई तुलना नहीं थी –

यद्भूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत् तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णु तेजसा।

एवं

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तद्भून्नारी व्याप्तलोक त्रयं त्विषा।

भक्ति रस

यह गन्थ भक्ति रस से ओतप्रोत है यथा

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वभिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुघा श्रूयता मम।।

एवं

त्वं स्वाहा त्वं स्वघा त्वं हि वषटकारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।

एवं

यथा त्वया जगत्स्रष्टता जगत्पात्यति यो जगत
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।।

गुण विमर्श–एवं तत्सम्बन्धित् उदाहरण –

माधुर्य गुण

ममट ने कहा – जो चित्र को प्रसन्न और श्रृंगार रस में विभोर कर दे वह माधुर्य गुण हैं – यथा

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्रा।
(अ0 11, श्लोक 33)

एवं

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरूषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण।।
(अ0–4, श्लो–12)

ओज गुण

जिस काव्य के श्रवण करने से चित्त का विस्तार एवं मन में तेज उत्पन्न होता है वह ओज गुण प्रधान होता है।

यथा

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुत्तम्।
काली करालवदना विनिष्कान्तासिपाशिनी।।
विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसतिभैरवा।।
(अ0–7, श्लो–6, 7)

प्रसाद गुण

जिस शब्द, समास या रचना के द्वारा श्रवण मात्र से शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाय वहाँ प्रसाद गुण होता है – यथा

स्वराचिषेऽन्तरे पूर्व चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले।।
(अ0–1, श्लो–4)

एवं

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाभ्यः स भूपति।
एकाकी हयमारूहय जगाम गहनं वनम्।।
(अ0–1, श्लो0–9)

रीति विविचेन

रीति को ही काव्याचार्यों ने वृत्ति, मार्ग, संघटना तथा शैली नामों से भी अभिहित किया है। वृत्ति मार्ग आदि सभी रूपों में इनकी संख्या तीन ही स्वीकार की गई है।

1. गौणी रीति अथवा पुरुषावृत्ति
2. वैदर्भी रीति अथवा उपनागरिक वृत्ति।
3. पांचाली रीति अथवा कोमला वृत्ति

आलोच्य ग्रन्थों में प्रधानता की दृष्टि से दुर्गासप्तशती में आजपूर्ण प्रसंगों की अधिकता के कारण–'गौणी रीति'–प्रधान है।

अलंकार विमर्श

काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने वाले तत्त्व को अलंकार का नाम दिया गया है।

अनुप्रास अलंकार

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमस्तुते।
(अ0–11, श्लो0–22)

इस श्लोक में ल, म और न वर्णो की एक–एक बार आवृत्ति हुई है, इसलिए यहाँ छेकानुप्रास है।

एक अथवा अधिक वर्णो की कई बार आवृत्ति वाले 'वृत्यानुप्रास' के उदाहरण हैं –

'सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।'
(अ0–11, श्लो0–24)

उपमा अलंकार

भेद होने पर साधर्म्य उपमा कहलाता है। यथा

चिक्षेप च ततस्तत्तु भ्रदकालीं महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बभिवाम्बरात्।
(अ0–3, श्लो0–9)

इस श्लोक में भद्रकाली के उपर चलाये गये शूल की आभा सूर्य–मण्डल की आभा के समान वर्णित हुई है, जिसे समानता–सूचक (वाचक) ''इव'' से प्रकट किया गया है।

रूपक अलंकार

जे उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन है वह रूपक अलंकार है। यथा –

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्ये भद्रकायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।
(अ0–5, श्लो0–9)

उत्प्रेक्षा अलंकार

प्रकृति की सम के साथ सम्भावना ही उत्प्रेक्षा कहलाती है। यथा –

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुतासनः।
निःश्वासन् भुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका।।
(अ0–2, श्लो0–52)

देवी का वाहन सिंह भी क्रोध से भरकर गर्दन के बालों को हिलाता हुआ, असुरों की सेना में इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनों में दावानल फैल रहा हो।

इस प्रकार दुर्गा सप्रशति की अवधारणा प्रस्तुति में कल्पना का विनियोग होता है तो मानो रस, रीति, अलंकार के रस बरसते मेघ के समान हृदयाकाश में दिखने लगते हैं। एतदर्थ इसमें काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रभूत सामग्री है जिससे इस ग्रन्थ की साहित्यिकता भी देदीप्यामान हो उठती है।

संदर्भ

1. दुर्गा सप्रशति, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. माकण्डेय पुराण एक अध्ययन, आचार्य वद्रीनाथ शुक्ल, चौ0 वि0 भ0 वाराणसी
3. भारतीय दर्शन का इतिहास, दास गुप्ता
4. भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त
5. दुर्गा सप्तशति और सौन्दर्यलहरी, विश्वमोहनी पाण्डेय, डी0 के0 प्रिन्ट वर्ल्ड, दिल्ली
6. कल्याण (शक्ति अंक) देवताड़क गीता प्रेस, गोरखपुर
7. कल्याण (शक्ति अंक), देवताड़क गीता प्रेस, गोरखपुर